जैन आगमों में सूक्ष्म शरीर की अवधारणा और आधुनिक विज्ञान

डॉ. महावीर राज गेलड़ा

जैन आगम साहित्य में सूक्ष्म शब्द का प्रयोग अनेक पारिभाषिक शब्दों के साथ हुआ है। सूक्ष्म जीव,[1] सूक्ष्म पुद्गल,[2] सूक्ष्म शरीर,[3] सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती ध्यान,[4] सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान,[5] सूक्ष्म सांपराय चारित्र[6] आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख हुआ है। सामान्यतः एक स्थूल की अपेक्षा किसी दूसरी वस्तु को सूक्ष्म और एक सूक्ष्म वस्तु की अपेक्षा किसी दूसरी वस्तु को स्थूल कहा जाता है।[7] जैन आगमों में पुद्गल के स्थूल और सूक्ष्म के भेद में परमाणु को अन्तिम सूक्ष्म कहा है।[8] स्थानांग के जीव निकाय पद में जीव को दो प्रकार का कहा है—सूक्ष्म और बादर[9]। सूक्ष्म जीव अतीन्द्रिय होते हैं तथा उन जीवों के सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है। कई सूक्ष्म जीव ऐसे भी हैं जो एक शरीर में एक साथ अनेक रहते हैं। सूक्ष्म जीव समूचे लोक में व्याप्त हैं और बादर जीव लोक के एक भाग में रहते हैं। विश्व स्थिति का रहस्य प्रकट करने में तथा अतीन्द्रिय विषयों के निर्णय में जैनों ने सूक्ष्म जीव के अतिरिक्त सूक्ष्म पुद्गल तथा सूक्ष्म शरीर का गहरा एवं वैज्ञानिक विवेचन किया है। सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म पुद्गल से निर्मित है।[10] अतः सूक्ष्म पुद्गल के व्यवहार की चर्चा, आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में करना न्यायसंगत होगा, क्योंकि प्रायः एक शताब्दी से वैज्ञानिक भी सूक्ष्म पदार्थ के अध्ययन में गहरी रुचि ले रहे हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार आकाश में ऐसा कोई स्थान खाली नहीं है, जहाँ पदार्थ न हो, क्योंकि ऊर्जा पदार्थ से भिन्न नहीं है। विश्व के दूरतम छोर तक भी तारों का प्रकाश पहुँचता है, गुरुत्वाकर्षण का बल रहता है। जैन दर्शन के अनुसार भी इस लोक में स्थूल तत्त्व की अपेक्षा, सूक्ष्म तत्त्व का बाहुल्य है। सूक्ष्म जीव और सूक्ष्म पुद्गल लोक के समस्त आकाश प्रदेशों में भरे हैं।[11] विज्ञान सूक्ष्म पदार्थ के क्षेत्र में अभी अनुसंधानरत है तथा स्थूल और सूक्ष्म के व्यवहार की भिन्नता पर, निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुँचा है।

वैज्ञानिक धारणाओं के अनुसार संहति को जड़ का मौलिक गुण माना गया है। पदार्थ का सूक्ष्म रूप भी संहति से भिन्न नहीं है। जैन दर्शन सूक्ष्म पुद्गल में संहति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का होना स्वीकार नहीं करता है यद्यपि सभी स्थूल पुद्गल संहति सहित होते हैं। इस दृष्टि से जैनों की पुद्गल की परिभाषा, विज्ञान के पदार्थ की परिभाषा से भिन्न हो जाती है। संहति-शून्य पुद्गल केवल चार स्पर्श के होते हैं।[१२] वे इस प्रकार हैं— स्निग्ध, रूक्ष, शीत तथा उष्ण। इनमें गुरु-लघु के स्पर्श नहीं होते हैं अतः इन सूक्ष्म पुद्गलों के पारस्परिक संयोग में जब स्निग्ध अथवा रूक्ष स्पर्श की बहुलता होती है तो गुरु लघु के स्पर्श उत्पन्न होते हैं। (इसी प्रकार शीत और स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से मृदु स्पर्श तथा उष्ण और रूक्ष की बहुलता से कठोर स्पर्श बनता है) जैन दार्शनिकों ने पुद्गलों के पारस्परिक संयोग का विस्तार से वर्णन किया है।[१३] जैनों ने माना है कि संहति-शून्य होने के कारण ही सूक्ष्म पुद्गल तीव्र गति से लोक के एक भाग से दूसरे भाग में एक समय में ही पहुँच जाते हैं। संहति-शून्य पुद्गल का विचार, जैनों का मौलिक है।

साधारणतः देह को शरीर कहा जाता है। जैन दर्शन में जीव के क्रिया करने के साधन को शरीर कहा है।[१४] अन्य परिभाषा के अनुसार जिसके द्वारा पौद्गलिक सुख-दुख का अनुभव किया जाता है वह शरीर है।[१५] शरीर का निर्माण पुद्गल वर्गणाओं से होता है। प्राणी और पुद्गल का प्रथम सम्बन्ध शरीर है। प्राणी का सर्वाधिक उपकारी और उपयोगी पुद्गल शरीर है। कार्य कारण आदि के सादृश्य की दृष्टि से शरीर पाँच प्रकार के बताये हैं—

१. औदारिक शरीर।
२. वैक्रियक शरीर।
३. आहारक शरीर।
४. तैजस शरीर।
५. कार्मण शरीर।

(१) औदारिक शरीर—ये स्थूल पुद्गल से बने हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों के शरीर, औदारिक शरीर हैं।

(२) वैक्रियक शरीर—छोटा-बड़ा, हल्का-भारी, दृश्य-अदृश्य आदि विविध क्रियाएँ करने में यह शरीर समर्थ होता है। देव, नारकी तथा लब्धिजन्य मनुष्य एवं तिर्यंच के यह शरीर होता है।

(३) आहारक शरीर—योगशक्तिजन्य शरीर। यह योगी मुनि के होता है।

(४) तैजस शरीर—यह विद्युत परमाणु समूह का बना होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **कार्मण शरीर**—जीवों की सत् असत् क्रिया के प्रतिफल बनने वाला कार्मण शरीर है।

स्थूल-सूक्ष्म

इन पाँच शरीर वर्गणाओं में सबसे अधिक स्थूल वर्गणाएँ औदारिक शरीर की हैं और उत्तरोत्तर शरीर की सूक्ष्मतर हैं। पहिले तीन शरीरों की अपेक्षा पिछले दो शरीर, सूक्ष्म कहलाते हैं।[१६] ये सभी संसारी जीवों के हर अवस्था में होते हैं। जीव के इन दो शरीरों के अलावा औदारिक अथवा वैक्रियक शरीर होता है। आहारक शरीर सम्पन्न मुनि अपने संदेह की निवृत्ति के लिए एक पुतले का निर्माण कर सर्वज्ञ के पास भजते हैं। वह उनके पास जाकर उनसे संदेह की निर्वृत्ति कर पुनः मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। यह शरीर योगी मुनियों के ही सम्भव है। यह शीघ्र गति से गमन करता है। यह इन्द्रिय-गम्य भी नहीं होता। फिर भी यह शरीर तैजस और कार्मण शरीर की अपेक्षा स्थूल होता है, क्योंकि यह आठ स्पर्श वाले पुद्गलों से निर्मित होता है। पं० सुखलाल जी संघवी ने तत्त्वार्थसूत्र की विवेचना में स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का अभिप्राय यह कहा है कि स्थूल की रचना परिमाण में शिथिल होती है और सूक्ष्म की सघन। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म में अनन्त स्कन्धों की सघनता होती है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि सूक्ष्म शरीर, संहति रहित पुद्गलों से बने हैं, अतः वे कम आकाश प्रदेश में ही अनन्त स्कन्धों के सहित समा जाते हैं—यही सूक्ष्मता है।

सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को स्वीकार करने में जैनों का स्पष्ट रूप से यह प्रयोजन रहा होगा कि वे कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को सुदृढ़ आधार दे सकें। जैसे—

(१) इस सृष्टि का कर्त्ता एवं नियन्ता ईश्वर नहीं है।

(२) पुनर्जन्म, कार्मण शरीर की भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रिया है।

(३) सूक्ष्म पुद्गल का गमन आकाश में अप्रतिघात होता हुआ तीव्रगति से लोकान्त तक हो सकता है।

(१) जैन दर्शन ईश्वर को इस लोक का कर्त्ता व नियन्ता स्वीकार नहीं करता। जैन चिन्तकों ने सूक्ष्म विश्व का गहरा अध्ययन कर इस तथ्य को महत्त्वपूर्ण माना कि सूक्ष्म जीव व पुद्गल के स्तर पर होने वाली घटनाएँ, परिवर्तन, गति आदि उनके गुण एवं पर्याय पर निर्भर करती हैं। यह जगत् स्वयं सिद्ध है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के दायरे में सभी द्रव्य अपने गुण तथा पर्याय को प्रकट करते रहते हैं। सूक्ष्म के स्तर पर होने वाली घटनाएँ, इन्द्रिय ग्राह्य न होने के कारण, ईश्वर को इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियन्ता मानना भ्रम है। संहति रहित सूक्ष्म पुद्गल, सूक्ष्म शरीर का रहस्यमय व्यवहार केवल उनके लिए अलौकिक है जो सूक्ष्म के व्यवहार से अपरिचित हैं। जैनों ने उन सूक्ष्म पुद्गलों को कर्म कहा जिसके कारण जीव सुख दुःख पाता है। कर्म जड़ है अतः सुख दुःख की प्रक्रिया भी पौद्गलिक है। कर्म के समूह जो जीव के साथ रहते हैं वे कार्मण शरीर कहलाते हैं। इस सूक्ष्म कार्मण शरीर की अवधारणा से ही जैन दर्शन में कर्मवाद का सिद्धान्त स्थिर हुआ है। कर्मवाद का सिद्धान्त अपने आप में एक स्वतन्त्र विषय है। इसी सिद्धान्त ने ईश्वर को कर्त्ता तथा नियन्ता के रूप में अस्वीकार किया है।

(२) जन्म : जन्म का अर्थ है उत्पन्न होना। मृत्यु के बाद जीव का पुनः स्थूल शरीर धारण करना पुनर्जन्म है। जैनों के अनुसार मृत्यु के साथ जीव का इस भव का स्थूल शरीर (औदारिक अथवा वैक्रियक) तो छूट जाता है लेकिन कार्मण और तैजस शरीर नये जन्म से पूर्व जीव के साथ ही रहते हैं। ये शरीर ही पुनर्जन्म के कारण हैं। ये सूक्ष्म शरीर ही जीव को गति देकर अन्य स्थान पर ले जाते हैं जहाँ नया आहार प्राप्त कर नये स्थूल शरीर का निर्माण प्रारम्भ होता है। ये शरीर पुनर्जन्म के समय जीव को नये स्थान पर कुछ ही समय में बिना प्रतिघात के लोकान्त तक भी पहुँचा देते हैं। जैनों ने इसे आश्चर्यकारी नहीं माना क्योंकि सूक्ष्म शरीर, संहति रहित होते हैं अतः गमन करने में कोई प्रतिघात नहीं होता। स्थानांग सूत्र[१७] में इसका अत्यन्त रोचक वर्णन आया है।

एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते समय अन्तराल गति को दो प्रकार का कहा है—ऋजु और विग्रह। ऋजु गति एक समय की होती है और जीव एक समय में ही नये स्थान पर पहुँच जाता है अगर वह स्थान आकाश की समश्रेणी में हो। यदि उत्पत्ति स्थान विश्रेणी में होता है तो जीव विग्रह गति से जाता है। इस विग्रह गति में एक घुमाव होता है तो उसका कालमान दो समय का, जिसमें दो घुमाव हों उसका काल मान तीन समय का और तीन घुमाव हों तो उसका काल मान चार समय का होता है। इस अन्तर का कारण लोक की बनावट है। भगवती सूत्र में वर्णन है कि लोक और अलोक की सीमा पर ऐसे कोने हैं कि वहाँ जीव को जन्म लेने में अधिकतम कालमान, चार समय लग सकते हैं और जीव को विग्रह गति से जाना होता है। इस अन्तराल गति में जीव के साथ तैजस और कार्मण शरीर रहते हैं। अतः संसारी जीव सदैव इन सूक्ष्म शरीरों से युक्त रहता है। पुनर्जन्म का कारण भी ये शरीर हैं और इनकी भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रिया ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्णायक है जो उनके स्निग्ध एवं रूक्ष गुण पर निर्भर करती है। इस प्रकार जैनों ने पुद्गल विज्ञान के आधार पर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्थिर किया है। परामनोविज्ञान के प्रयोगों की सार्थकता अधिक महत्त्वपूर्ण होगी जब सूक्ष्म शरीर के संहति रहित व्यवहार के क्षेत्र में नये प्रयोग होंगे।

(३) विज्ञान के अनुसार प्रकाश की गति अधिकतम होती है। जैन दर्शन में प्रकाश के पुद्गलों को आठ स्पर्श वाले स्थूल पुद्गल कहा है। सूक्ष्म पुद्गलों की गति, स्थूल पुद्गलों की गति से अधिक होने के प्रमाण जैन आगमों में उपलब्ध हैं। (१) एक परमाणु, एक समय में १४ रज्जू तक की यात्रा कर लेता है। (२) मन तथा वचन की वर्गणाएँ भी एक समय में बहुत दूरी तय कर लेती है और दूसरे के मन के भाव को जान लेती हैं। (३) सूक्ष्म शरीर भी लोक के दूरतम छोर तक सीधी गति से एक समय में ही पहुँच जाते हैं। (४) जहाँ भी चार स्पर्श वाली पुद्गल वर्गणाओं का वर्णन है, उनकी गति अत्यन्त तीव्र मानी है।

जैन आगमों में वर्णित इन उदाहरणों से काल की सूक्ष्मतम इकाई समय और आकाश की सूक्ष्मतम इकाई प्रदेश के सम्बन्ध में चिन्तन आवश्यक है। सूक्ष्म शरीर जहाँ लोकान्त तक जाते हैं उसमें एक समय लगता है तो एक आकाश प्रदेश से निकटतम दूसरे आकाश प्रदेश तक गमन करने में भी एक समय लगता है। आगमों में जहाँ भी सूक्ष्म पुद्गलों के गमन के बारे में वर्णन है, जो जीव के लिए उपयोगी है, जैसे मन, वचन, श्वासोच्छ्वास, तैजस और कार्मण शरीर, लेश्या, वहाँ उनकी गति के लिए एक समय का ही प्रयोग किया गया है। इससे यह भ्रम होता है कि संभवतः जैनों के पास सूक्ष्म काल के सम्बन्धी कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी अथवा सूक्ष्म पुद्गल आकाश एवं काल के निरपेक्ष गमन करते होंगे। भगवती सूत्र में काल के विभिन्न मान दिए हैं[१९] तथा नारक और देवों तक के आयुष्य काल का प्रचुर वर्णन किया है। अतः यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जैनों के पास काल की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं रही होगी। यह मानना न्यायसंगत होगा कि सूक्ष्म पुद्गल तथा सूक्ष्म शरीर का गमन आकाश तथा काल निरपेक्ष होता होगा, तभी वे एक समय में विभिन्न दूरियाँ तय कर सकेंगे। वैज्ञानिक आइन्स्टीन के अनुसार आकाश और काल कोई स्वतन्त्र तथ्य नहीं हैं। ये पदार्थ के धर्ममात्र हैं। सूक्ष्म पुद्गलों के लिए ही जैनों को दो द्रव्य, धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय स्वीकार करने पड़े होंगे[२०] जो कि उनकी गति एवं स्थिति में सहायक हो सकें, क्योंकि स्थूल पुद्गल की गति आकाश एवं काल सापेक्ष होती है, उन पुद्गलों में संहति होती है अतः वे स्वयं के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण से ही गतिमान् हो जाते हैं। स्थूल पुद्गल की गति के लिए धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय का होना अनिवार्य नहीं है। सम्भव यही है कि सूक्ष्म पुद्गल तथा सूक्ष्म शरीर की गति आकाश तथा काल निरपेक्ष होने से वे अप्रतिघात करते हुए गमन कर लेते हैं और लोकान्त तक भी पहुँच जाते हैं।

इस प्रकार सूक्ष्म शरीर की अवधारणा से जैन आगमों में जीव तथा पुद्गल दोनों के सूक्ष्म स्वरूप को निश्चित किया गया है।

संदर्भ

१. प्रज्ञापना पद १
२. अनुयोगद्वार (प्रमाणद्वार), ठाणं २।२
३. तत्त्वार्थसूत्र २।३८
४. तत्त्वार्थसूत्र ९।४१
५. जैन सिद्धान्त दीपिका ८।२३
६. जैन सिद्धान्त दीपिका ८।१४
७. तत्त्वार्थसूत्र ५।२४
८. जैन सिद्धान्त दीपिका १।१४
९. ठाणं २।५५
१०. तत्त्वार्थसूत्र २।३८
११. उत्तराध्ययन २६।७२
१२. भगवती २।४, प्रज्ञापना २८।९
१३. तत्त्वार्थराजवार्तिक ५।३४, ३५, ३६
१४. तत्त्वार्थसूत्र २।३७
१५. जैन सिद्धान्त दीपिका ८।२६
१६. तत्त्वार्थसूत्र २।३८
१७. ठाणं २।१८१
१८. भगवतीसूत्र १६।११६
१९. भगवतीसूत्र ११।१२८
२०. ठाणं २।१

गवर्नमेण्ट कालेज,
भीलवाड़ा, राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org